टेम्स की सरगम:
समीक्षात्मक संदर्भ
सम्पादक द्वय:
कुमार सुशान्त
मयंक

टेम्स की सरगम: समीक्षात्मक संदर्भ

कुमार सुशांत, मयंक

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: जून, 2024

© कुमार सुशांत, मयंक

अनुक्रम

भूमिका 4

टेम्स की सरगम : भाषा एवं शिल्प-वैशिष्ट्य 7

'मणिवर्मन' अशोक जाँगिड़

आजादी के दौर की प्रेम कथा –'टेम्स की सरगम' 23

गौरव कुमार

टेम्स की सरगम: प्रेम की सरगम और आजादी के तराने ओ विदेशिनी 35

गीताश्री

टेम्स की सरगम : शोषण का स्याह पक्ष 51

गुलनाज़ बेगम

टेम्स के किनारों से 58

जया केतकी

टेम्स की सरगम का स्त्री पक्ष 65

मुनमुन अग्रवाल

अँधेरे से ठीक पहले का उजास 95

डॉ प्रमिला वर्मा

टेम्स की सरगम : शाश्वतप्रेम 112

डॉ. पूजा पाठक

निर्बाध, निरव्याज अनंत प्रेम है टेम्स की सरगम 122

पुष्पा भारती

टेम्स की सरगम : एक समीक्षा 129

सुजाता कुमारी

कला, संस्कृति और दर्शन की अलाव में तपता उदात्त प्रेम 148

मयंक

मैं प्रेम दीवानी 163

वीरपाल सिंह यादव

एक युग के अवसान और एक युग के प्रारम्भ के संधिस्थल पर पाठक को ला छोड़ता है उपन्यास 172

डॉ. विनीता राहुरीकर

प्रेम की सृजनात्मक सरगम 181

डॉ शुभम मोंगा

भूमिका

प्रेम का निश्छल रूप जीवन का असाधारण पक्ष है, साथ ही अपरिहार्य अनिवार्यता भी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'प्रेम एकांतिक होता है'। यह सत्य भी है। किन्तु यही एकांतिकता, पिंड से ब्रह्माण्ड के सफर को सम्पूरित करती है। जीवन में उत्प्रेरण का अचल पुंज है – प्रेम ! इस उपन्यास में यही प्रेम, स्वतन्त्रता-आंदोलन की आंच में तपकर और भी प्रगाढ़ होता जाता है। स्वतन्त्रता आंदोलन की जद में, प्रेम का स्थायी पक्ष, इस उपन्यास के मूल में समाहित है। प्रेम कथातंत्र का मूल उत्स है ही, किन्तु वह प्रेम दैहिक-बिम्ब से परे है।

रचनाकार जब सृजन कर रहा होता है तो चरित्र गढ़ते समय वह कई बार कल्पना और यथार्थ से मुठभेड़ करते हुए आगे बढ़ता है। यथार्थ के समावेश से आसपास के चरित्रों से तादात्म्य स्थापित होता है। कल्पना में ऐसा तारल्य भाव समाहित होता है, जो किसी भी कथानक एवं चरित्र को सच के क़रीब ला खड़ा करने का माद्दा रखता है। उपन्यास पढ़ते-पढ़ते पाठक कुछ ऐसे ही भावों का एहसास करते हैं। 'कुछ ऐसे ही भाव' इसलिए क्योंकि कभी-कभी भावों की तरलानुभूति तो होती है, किन्तु उसका पूर्णत: भान नहीं होता।

इस उपन्यास पर कई कोणों से दृष्टिपात किया जा सकता है। यथा स्त्री-विमर्श के नज़रिए से भी देखा-समझा जा सकता है। डायना का स्त्रीत्व, सबल है, समर्पित है और परस्परता को जीवन का अभिन्न अंग मानता है। यहाँ पुरुष का निषेध नहीं, बल्कि पुरुष-स्त्री का अपरिहार्य अवलंबन है। स्यूडो स्त्रीवाद तो यहाँ है ही नहीं। स्त्री-विमर्श है, वह भी सधा हुआ!

एक और ज़रूरी तथ्य है, जो इस उपन्यास की बनावट और बुनावट (दोनों को) सुदृढ़ आधार प्रदान करता है। उपन्यास का परिवेश स्वतन्त्रता आंदोलन के इर्द-गिर्द का है। सांस्कृतिक, सामाजिक, एवं धार्मिक एकता का समय ! उपन्यासकार ने उस वक़्त की सभी जाति तथा समुदायों के बीच सामूहिक एकत्व एवं सद्भावना का जो निदर्शन किया है, वह उसके इतिहास की समझ और साहित्य की प्रज्ञात्मक संवेद्यता का विश्वस्त परिचय देता है। चाहे वह नादिरा हो, डायना हो या फिर आदिवासी समुदाय से संबंध रखने वाले डायना के घर के सहायक ! यह उस समय का जातिगत, सांप्रदायिकगत एवं सामाजिक एकीकरण सत्य भी है और आज की तो ख़ैर प्रतिबद्ध अनिवार्यता !

अंत में बस इतना ही कि इस रचना को देखने-समझने के लिए कई झरोखे खुले मिलेंगे। उन झरोखे से झाँककर विभिन्न आयामों के दायरे में उसे देखा जा सकता है। दलित-विमर्श, स्त्री-विमर्श, उत्तर आधुनिक और उत्तर औपनिवेशिक दृष्टिकोणों से